जनचेतना का प्रगतिशील कथा-मासिक

ISSN 2454-4450

मूल्य ₹ 75

हंस

नवंबर 2026



संपादक
संजय सहाय
•
प्रबंध निदेशक
रचना यादव
•
व्यवस्थापक/सह-संपादन सहयोग
वीना उनियाल
•
सहायक संपादक
शोभा अक्षर
माने मकर्तच्यान
•
प्रसार एवं लेखा प्रबंधक
हारिस महमूद
•
शब्द-संयोजन एवं रूपांकन
प्रेमचंद गौतम
•
सोशल मीडिया प्रबंधक
नाज़रीन
•
ग्राफिक्स
साद अहमद
•
कार्यालय सहायक
किशन कुमार, दुर्गा प्रसाद
•
मुख्य प्रतिनिधि (उ.प्र.)
राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
•
रेखाचित्र
शैलेंद्र सरस्वती, सिद्धेश्वर, बलविन्द्र सिंह 'बलि'

कार्यालय
अक्षर प्रकाशन प्रा. लि.
4229/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-2
व्हाट्सऐप : 9717239112, 9560685114
दूरभाष : 011-41050047
ईमेल : editorhans@gmail.com
वेबसाइट : www.hanshindimagazine.in

मूल्य : 75 रुपए प्रति
वार्षिक रजिस्टर्ड : 1250 रुपए (व्यक्तिगत)
संस्था/पुस्तकालय : 1500 रुपए (संस्थागत)
वार्षिक पीडीएफ : 600 रुपए (व्यक्तिगत)
पीडीएफ : 700 रुपए (संस्थागत)
विदेशों में : 80 डॉलर
सारे भुगतान मनीऑर्डर/चैक/बैंक ड्राफ्ट द्वारा अक्षर प्रकाशन प्रा. लि. (Akshar Prakashan Pvt. Ltd.) के नाम से किए जाएं.

हंस/अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे. अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है. हंस में प्रकाशित रचनाओं में विचार लेखकों के अपने हैं. उनसे हंस की सहमति अनिवार्य नहीं है. साथ ही उनके मौलिक या अप्रकाशित होने का उत्तरदायित्व संपादक और प्रकाशक का नहीं है बल्कि यह दायित्व रचनाकार का है.

प्रकाशक/मुद्रक : **रचना यादव खन्ना** द्वारा अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., 4229/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 के लिए प्रकाशित एवं चार दिशाएं, जी-39/40, सेक्टर-3, नोएडा- 201301 (उ.प्र.) से मुद्रित. संपादक–संजय सहाय.

नवंबर, 2026

मूल संस्थापक : **प्रेमचंद : 1930**
पुनर्संस्थापक : **राजेन्द्र यादव : 1986**

पूर्णांक-481 वर्ष : 41 अंक : 4 नवंबर 2026



आवरण : पारुल तोमर

जनचेतना का प्रगतिशील कथा-मासिक

इस अंक में

संपादकीय
4. जेन ज़ी-जेन ज़ी कितना पानी? : संजय सहाय

अपना मोर्चा
7. पत्र

आने वाले दिनों के सफ़ीरों के नाम
12. परंपराओं के महिमा-मंडन के प्रति मैं कभी सहज नहीं हो पायाः (राजेश जोशी से वैभव सिंह का संवाद)

मुड़-मुड़ के देख
21. वापसी : संजीव ('हंस', अगस्त 1986)

कहानियां
28. चनकः महावीर राजी
36. मल्टी-हाइट्स में मुसब्बिरः राजेन्द्र लहरिया
44. योद्धाः राकेश कुमार सिंह
50. अंत की तलाश मेंः विवेक कुमार शुक्ल
60. सैंतीस पुलः आमिर हुसैन (उर्दू कहानी) (अनुवादः कुशल खन्धार)

कविताएं
58. स्मिता सिन्हा, सतीश सम्यक

हस्तक्षेप
64. फासीवाद की गोदी में बैठा हिंदी लेखकः नवीन कुमार

उपन्यास अंश-9
68. सोमालिया का यातनाघर : राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय

आराम नगर
71. सिनेमा, समाज और इतिहास की त्रयीः मृत्युंजय श्रीवास्तव

बीच बहस में
76. ज़ाहिदे तंग नज़र ने मुझे काफ़िर जाना*: अतहर फ़ारूक़ी

ग़ज़ल
57. ममता किरण
63. प्रशांक चंद्रा

लघुकथा
75. पाप समाधानः ज्ञानदेव मुकेश

परख
83. स्खलित होती परंपरा के विद्रूपित वारिसः विनोद शाही
86. पूर्वदीप्ति, स्मृति और वर्तमानः गरिमा श्रीवास्तव

साहित्यनामा
89. कौन देस से आया हंसा, उतरना कौन घाटः साधना अग्रवाल

शब्दवेधी/शब्दभेदी
94. क्या यह देश हिंदुओं का भी देश है?: तसलीमा नसरीन

रेतघड़ी
97

जेन ज़ी-जेन ज़ी कितना पानी?

जनसंख्या का पीढ़ियों के अनुसार किया गया वर्गीकरण किसी एक व्यक्ति की ईजाद नहीं है. यह पिछली सदी में नए समाजशास्त्रीय सिद्धांतों पर निर्मित और विकसित हुआ था. जर्मन समाजशास्त्री कार्ल मैनहाईम ने इसकी बौद्धिक ज़मीन रची थी. अपने 1928 के लेख 'द प्रॉब्लम ऑफ़ जेनरेशंस' में उन्होंने स्थापित करने की चेष्टा की थी कि साझा ऐतिहासिक अनुभव किस प्रकार मानवीय चेतना और सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करते हैं.

20वीं सदी में सामरिक दबावों के तहत समकालीन लेखकों, जनसांख्यिकी विशेषज्ञों, 'टाइम्स' सरीखे पत्रों, मीडिया और बाज़ार ने मैनहाईम के इन विचारों को सुविधानुसार प्रयोग में उतारते हुए अनेक पीढ़ीगत खांचों का निर्माण कर डाला, जैसे बेबी बूमर्स, जेन एक्स, मिलेनियल्स, जेन ज़ी और जेन अल्फ़ा आदि, जो वर्तमान में बोलचाल की भाषा का हिस्सा बन चुके हैं. आगे चलकर इन अवधारणाओं पर शोध के उपरांत, इन्हें डेटा-बैंक की तरह इस्तेमाल करते हुए मंडी में बैठे पेशेवरों ने इसका बाज़ारीकरण कर दिया. पूंजीपतियों ने पीढ़ियों में विभक्त उपभोक्ताओं की बदलती रुचियों को परखते हुए उत्पादों की प्रभावशाली मार्केटिंग आरंभ की और अपनी तिजोरियां भरने के नए-नए रास्ते खोज लिए. यह सारा खेल अमेरिकी पूंजीवाद की छतरी के नीचे रचा गया. जेन ज़ी का ज़ी ही इस बात का पुख़्ता सबूत है. अगर यह शब्दावली अमेरिकी नहीं होती, तो यह निश्चित रूप से ब्रिटिश प्रभाव वाले अनेक मुल्कों में जेन ज़ेड ही कहलाती.

बहरहाल, हम बहुचर्चित जेन ज़ी पर आते हैं. भारत का जेन ज़ी जिन उत्पादों पर सबसे ज्यादा खर्च करता है, उनमें कपड़े, जूते, ब्यूटी प्रोडक्ट्स, इलेक्ट्रॉनिक्स/स्मार्ट फ़ोन सहित अन्य स्मार्ट गैजेट्स, इलेक्ट्रॉनिक मनोरंजन के साधन जैसे वीडियो/लैपटॉप गेम्स, वाहन आदि शामिल हैं. अलबत्ता, पश्चिम के जेन ज़ी की तुलना में भारत के मध्यमवर्गीय और उच्च मध्यमवर्गीय जेन ज़ी नौकरी से पहले अभिभावकों द्वारा ही पाले-पोसे जाते हैं. एक तो छोटे मझोले शहरों और कस्बों में अस्थाई नौकरियों के अवसर भी सीमित हैं, दूसरे सामाजिक संकोच इनके आड़े आता है. दिल्ली, मुंबई जैसे महंगे महानगरों में तीस-चालीस हज़ार की नौकरी के बावजूद इन युवाओं को काफ़ी हद तक पारिवारिक सहारे पर ही जीना पड़ता है. अभावों से जूझते कुछ जेन ज़ी चंद रुपयों के लिए आसानी से किसी संपन्न राजनीतिक दल के प्यादे भी बन जाते हैं.

भारतीय और पश्चिम के जेन ज़ी वैश्विक डिजिटल प्रवृत्तियों और सोशल मीडिया के उपयोग में तो समान दिखते हैं, किंतु मूल सामाजिक संरचना, विस्तृत पारिवारिक प्रभावों और सांस्कृतिक पहचान में वे बिल्कुल भिन्न हैं. पश्चिमी जेन ज़ी जल्द से जल्द अपने माता-पिता के साये से मुक्त हो जाना चाहता है और निजता, व्यक्तिवादी सोच और स्वतंत्र जीवन में विश्वास रखता है. जबकि इसके ठीक उलट भारतीय जेन ज़ी एक सामूहिकतावादी समाज में जड़ें जमाए बैठा है, जहां समूचे परिवार तक की इच्छाएं और मशविरे अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाते हैं. दक्षिण-पूर्व एशिया की इस जीवन शैली में अनेक युवा तो ताउम्र अपने माता-पिता के साथ ही रह जाते हैं. रूढ़ियों और आधुनिकता में फंसा भारतीय जेन ज़ी दो पाटों के बीच पिसकर बहुधा कोई दिशा तय नहीं कर पाता और समझौते करने का आदी हो जाता है.

हर पीढ़ी की तरह जेन ज़ी की भी अपनी मज़बूतियां और कमज़ोरियां हैं. इस बात को लेकर मेरी कितनी ही तीखी बहसें उन लोगों से होती रही हैं जो भारत के समूचे जेन ज़ी को विद्रोही और प्रगतिशील पीढ़ी मान बैठे हैं. मानो जेन ज़ी की पीढ़ी में पैदा हुए बच्चों का डीएनए बदल जाता हो, मानो वे सीधे ब्रह्मा के मुख या किसी अन्य द्वार से पैदा हुए हों, अतिमानवीय नस्ल में तब्दील हो गए हों—यह एक तरह की घटिया सी ब्राह्मणवादी सोच ही है, जिसे विवेकशील लोगों द्वारा एक सिरे से ख़ारिज कर देना चाहिए. यहां कोई किसी भी पीढ़ी का हो, उसकी निर्मिति में अपने समय की अवधारणाएं, सामाजिक-पारिवारिक दबाव, टेक्नोलॉजी, देश-विदेश की राजनीतिक हलचल, अर्थव्यवस्था—सबकी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है. इसमें जड़ीभूत परंपराओं और सुविधापरस्त प्रगतिशीलता की छौंक भी लगा दें, तो वह चूं-चूं का मुरब्बा तैयार होता है जिसे हम वर्तमान भारतीय समाज कहते हैं, जहां सती, नरबली जैसी घिनौनी परंपराएं आज तक जीवित हैं. जहां मनुस्मृति भी एक तरक़्क़ीपसंद आधुनिक संविधान की छाया में फल-फूल रही है. इससे इतर पश्चिम के जेन ज़ी का एक विशाल प्रतिशत परंपराओं और थोपे गए संस्कारों से मुक्त हो चुका है, उदाहरण के तौर पर अमेरिकन जेन ज़ी का लगभग 60 प्रतिशत ऐसे ही जेन ज़ियों से बना है, जबकि वहां की जेन ज़ी का 40 फ़ीसदी अभी भी पारंपरिक और श्वेत उत्कृष्टता वाली सोच में जकड़ा हुआ है और उनमें अधिकतर ट्रम्प के वोटर हैं.

ख़ैर, भारत के जेन ज़ी को एक समरस इकाई मान लेना भी भारी भूल होगी. भारतीय घरों पर धर्म और आस्था की जकड़ इतनी मज़बूत है कि यहां का युवा चाहकर भी अपने होशोहवास में नहीं रह सकता. अपनी इच्छानुसार लिए गए स्वतंत्र निर्णय उसके लिए शारीरिक और आर्थिक दृष्टि से हानिकारक हो सकते हैं. इसमें भी लड़कियों की स्थिति कहीं ज्यादा ख़राब है. हालांकि चीज़ें बदल रही हैं, लेकिन बहुत ही धीमी गति से. समाज के एक बड़े हिस्से में लड़कियों पर आज भी तरह-तरह की पाबंदियां हैं, जबकि लड़कों को प्यार-मुहब्बत करने की छूट है. माताएं गर्व के साथ ढिंढोरा पीटती हैं कि बबुआ के पीछे कितनी लड़कियां मरा करती हैं. पुराना ज़माना होता तो बबुआ के सफल शिकार के लिए शायद यज्ञ आदि के भी आयोजन होते. तो बबुआ जहां चाहें जई की बुवाई करें, अपनी फसल उगाएं, लेकिन शादी तो वहीं होगी जहां मईय्या चाहेगी या बाप की जेब भरेगी. हमारे देश के अनेक हिस्सों में लड़के तो आख़िर लड़के ही होते हैं, लड़कियां भला उनकी बराबरी कैसे कर सकती हैं?, क्या वे लड़कों की तरह खड़े होकर मूत सकती हैं? जैसे घटिया और आपराधिक जुमले उछालने वाले आज भी हर तरफ़ मिल जाते हैं.

तो एक तरफ़ हम क्रांतिकारी बनने का स्वांग भरते हैं, तो दूसरी तरफ़ तमाम सड़ी-गली परंपराओं को ढोना अपनी शान समझते हैं और उन्हें अपनी संस्कृति का चमकता हुआ अध्याय मानते हैं! इसी नैतिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक उलझन का गुच्छा है हमारा भारतीय जेन ज़ी. जाने क्यों हम यह भूल जाते हैं कि उत्पाती धार्मिक कांवड़ियों, धर्म और सत्ता द्वारा पोषित हत्यारी दंगाई भीड़ से लेकर जमुई में संस्कृति रक्षक बने अपराधियों तक—हम जिधर नज़र दौड़ाएं, हमें हर भीड़ में जेन ज़ी की उपस्थिति नज़र आएगी. गोरक्षा के नाम पर जो हत्यारी भीड़ जुटती है वहां भी बड़ी तादाद में जेन ज़ी दिखाई देते हैं. जंतर-मंतर की आंदोलनकारी लड़की के पिता के ऊपर किए गए जानलेवा हमले को अंजाम देने वाला भी जेन ज़ी समूह से ही आता है. इसलिए सिर्फ़ किसी एक पीढ़ी का हो जाने भर से कोई तर्कसंगत, उदारवादी, क्रांतिकारी या जाहिल और प्रतिक्रांतिकारी भी नहीं हो जाता. जेन ज़ी के लिए यह मुनादी पीट देना कि वे क्रांति और सामाजिक परिवर्तन के अग्रदूत हैं परम नादानी होगी.

यहां यह भी कह देना उतना ही आवश्यक है कि सामाजिक-राजनीतिक रूप से प्रशिक्षित नेहा बोरा जैसे जेन ज़ियों की प्रतिबद्धता, ज़ोखिम मोल लेने का उनका साहस और सामाजिक दायित्वों के प्रति उनकी निष्ठा प्रशंसीय हैं. इन संगठित, संयमी और जागरूक आंदोलनकारियों के अलावा भी जंतर-मंतर पर पुलिस की बर्बरता झेल रहे, वोट-चोरी को लेकर ज्ञानेश कुमार के इस्तीफ़े की मांग करते, जेलों में ठूंसे जा रहे, डंडे खाते भारतीय युवाओं की भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण है. भले ही पूर्व में इस तुगलकी राज को स्थापित करने में भी उनकी छोटी-बड़ी भागीदारी रही हो. ख़ैर, देर आयद दुरुस्त आयद! यद्यपि राजनीतिक परिपक्वता के अभाव में उनसे नासमझियां भी हो रही हैं, जिनका लाभ उनके विरोधी उठाने की हरसंभव चेष्टा करेंगे. मसलन, धर्मनिरपेक्षता और धर्मनिरपेक्ष शब्दावली को लेकर उनमें भ्रम की स्थिति दिखाई देती है—जातिगत भेदों को लेकर तो और भी ज्यादा! नारों के नाम पर उनके पास या तो बचकानी सी तुकबंदियां हैं या फिर गंभीर गाली-गलौज. इससे बचने की आवश्यकता है.

ख़ैर, यह तो स्पष्ट हो गया है कि हमारे सामने जेन ज़ी बनाम जेन ज़ी की स्थिति बनी हुई है. तब कुल मिलाकर बात मुक्तिबोध तक जा पहुंचती है कि 'पार्टनर, तुम्हारी पॉलिटिक्स क्या है?'...कि तुम्हारी ज़िम्मेदारियां क्या हैं, तुम्हारी निष्ठा कहां है, तुम्हारी संवेदनाएं कहां खड़ी हैं, कि तुम स्वतंत्र भारद्वाज वाले जेन ज़ी हो, या फिर नेहा बोरा वाले...

उधर बांग्लादेश और नेपाल में जेन ज़ी आंदोलनों की सफलता देख बहुतों की गहरी आस्था उनमें जाग उठी थी, इन लोगों की मिसाल दी जाती थी, किंतु जिस तरह बांग्लादेश की तथाकथित